1951G Shrutpanchami: Celebration of Completion of Shatkhandagam

Shrut Panchami (In Gyan Deep, June 1951)

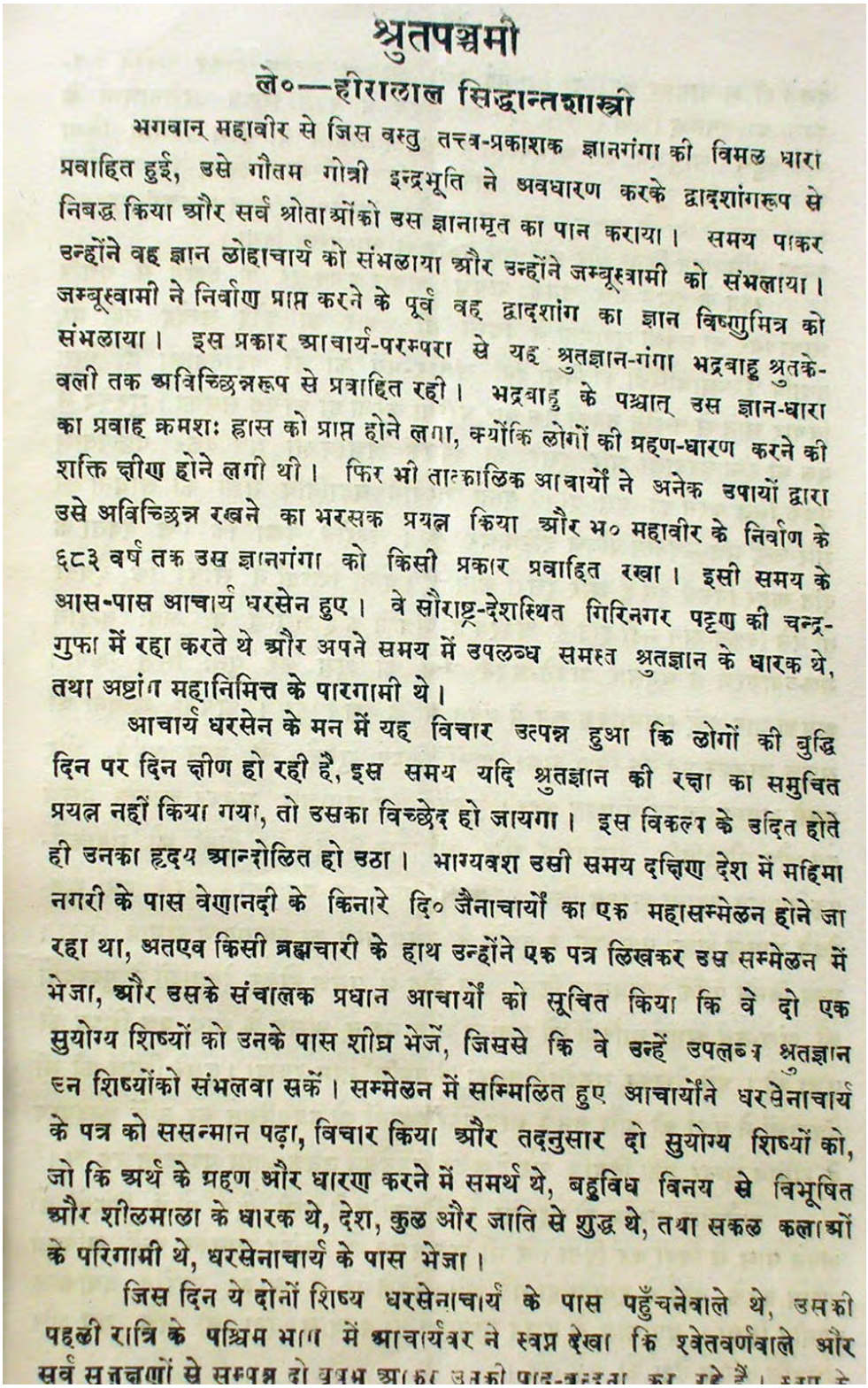

श्रुतपञ्चमी

ले०—हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री

भगवान् महावीर से जिस वस्तु तत्त्व-प्रकाशक ज्ञानगंगा की विमल धारा प्रवाहित हुई, उसे गौतम गोत्री इन्द्रभूति ने अवधारण करके द्वादशांगरूप से निबद्ध किया और सर्व श्रोताओंको उस ज्ञानामृत का पान कराया। समय पाकर उन्होंने वह ज्ञान लोहाचार्य को संभलाया और उन्होंने जम्बूस्वामी को संभलाया। जम्बूस्वामी ने निर्वाण प्राप्त करने के पूर्व वह द्वादशांग का ज्ञान विष्णुमित्र को संभलाया। इस प्रकार आचार्य-परम्परा से यह श्रुतज्ञान-गंगा भद्रबाहु श्रुतकेवली तक अविच्छिन्नरूप से प्रवाहित रही। भद्रबाहु के पश्चात् उस ज्ञान-धारा का प्रवाह क्रमशः ह्रास को प्राप्त होने लगा, क्योंकि लोगों की ग्रहण-धारण करने की शक्ति क्षीण होने लगी थी। फिर भी तात्कालिक आचार्यों ने अनेक उपायों द्वारा उसे अविच्छिन्न रखने का भरसक प्रयत्न किया और भ० महावीर के निर्वाण के ६८३ वर्ष तक उस ज्ञानगंगा को किसी प्रकार प्रवाहित रखा। इसी समय के आस-पास आचार्य धरसेन हुए। वे सौराष्ट्र-देशस्थित गिरिनगर पट्टण की चन्द्रगुफा में रहा करते थे और अपने समय में उपलब्ध समस्त श्रुतज्ञान के धारक थे, तथा अष्टांग महानिमित्त के पारगामी थे।

आचार्य धरसेन के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि लोगों की बुद्धि दिन पर दिन क्षीण हो रही है, इस समय यदि श्रुतज्ञान की रक्षा का समुचित प्रयत्न नहीं किया गया, तो उसका विच्छेद हो जायगा। इस विकल्प के उदित होते ही उनका हृदय आन्दोलित हो उठा। भाग्यवश उसी समय दक्षिण देश में महिमा नगरी के पास वेणानदी के किनारे दि० जैनाचार्यों का एक महासम्मेलन होने जा रहा था, अतएव किसी ब्रह्मचारी के हाथ उन्होंने एक पत्र लिखकर उस सम्मेलन में भेजा, और उसके संचालक प्रधान आचार्यों को सूचित किया कि वे दो एक सुयोग्य शिष्यों को उनके पास शीघ्र भेजें, जिससे कि वे उन्हें उपलब्ध श्रुतज्ञान इन शिष्योंको संभलवा सकें। सम्मेलन में सम्मिलित हुए आचार्योंने धरसेनाचार्य के पत्र को ससन्मान पढ़ा, विचार किया और तदनुसार दो सुयोग्य शिष्यों को, जो कि अर्थ के ग्रहण और धारण करने में समर्थ थे, बहुविध विनय से विभूषित और शीलमाला के धारक थे, देश, कुल और जाति से शुद्ध थे, तथा सकल कलाओं के परिगामी थे, धरसेनाचार्य के पास भेजा।

जिस दिन ये दोनों शिष्य धरसेनाचार्य के पास पहुँचनेवाले थे, उसकी पहली रात्रि के पश्चिम भाग में आचार्यवर ने स्वप्न देखा कि श्वेतवर्णवाले और सर्व सुलक्षणों से सम्पन्न दो वृषभ आकर उनकी पाद-वन्दना कर रहे हैं। स्वप्न के

देखते ही आचार्यवर की निद्रा भंग हुई और अत्यन्त सन्तुष्ट होकर उन्होंने श्रुत-देवता का जयनाद किया। उसी दिन यथासमय वे दोनों शिष्य धरसेनाचार्य के पास पहुँचे। साधुजनोचित अभिवादन के पश्चात् उन्होंने दो दिन विश्राम किया और तीसरे दिन गुरुदेव के पास जाकर सविनय निवेदन किया कि हम दोनों अमुक कार्य से आपके पादमूल को प्राप्त हुए हैं। गुरुदेव ने 'बहुत अच्छा' कहकर उनका अभिवादन किया और उन्हें सर्व प्रकार से आश्वासन दिया।

स्वप्न के देखने और उनके प्रत्यक्ष आचार-व्यवहार के देखने से यद्यपि आचार्यवर को उनकी सुपात्रता में किसी भी प्रकार का कोई सन्देह नहीं था, तथापि 'स्वेच्छाचारियों को विद्या देना संसार-भय का ही बढ़ानेवाला है, ऐसा विचार आने से उन्होंने उनकी एक वार परीक्षा करना ही उचित समझा। गुरुदेव ने एक को हीनाक्षरवाला और दूसरे को अधिक अक्षरवाला मंत्र देकर षष्ठोपवास पूर्वक सिद्ध करने की आज्ञा दी। दोनों शिष्योंने यथाविधि मंत्रों की साधना की और उन्हें मंत्र—देवता प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हुए। उन्होंने देखा कि एक देवता के दांत बाहर निकले हुए हैं और दूसरी कानी है। दोनों शिष्यों ने सोचा कि देवता तो ऐसे विकृत अंग नहीं होते हैं, अवश्य ही मंत्र में कोई अशुद्धि है, अतः उन्होंने मंत्र-व्याकरण के अनुसार अपने-अपने मंत्रों को शुद्ध कर पुनः सिद्ध किया। अबकी वार उन्हें स्वाभाविक रूप में देवताओं के दर्शन हुए। अपनी साधना को सफल जानकर प्रमुदित चित्त होकर दोनों शिष्य गुरुदेव के पास पहुंचे, और उनसे समस्त वृत्तान्त यथावत् कहा। गुरुदेव सर्व समाचार सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और सौम्यतिथि, शुभनक्षत्र और उत्तमवार के दिन उन दोनों को महाकर्म-प्रकृतिप्राभृत पढ़ाना प्रारम्भ किया। क्रमशः ग्रन्थ का व्याख्यान करते हुए गुरु-देवने आषाढ़ शुक्ला एकादशी के पूर्वाह्न के समय ग्रन्थ का व्याख्यान समाप्त किया। ग्रन्थ विनय पूर्वक अवधारण किया, इस बात से प्रसन्न होकर देवताओं ने पुष्पवर्षा की, शंख-तूर्य आदि वादित्रों को बजाया और महान् उत्सव के साथ एक शिष्य की पूजा की। उसे देखकर गुरुदेवने उनका 'भूतबलि' नाम रक्खा। दूसरे शिष्य की भी देवताओं ने पूजा की और उनके अस्त-व्यस्त दांतों को व्यवस्थित कर उन्हें कुन्दपुष्प के समान सुन्दर बना दिया। यह देखकर गुरुदेवने उनका नाम पुष्पदन्त रक्खा।

वर्षाकाल प्रारम्भ हो रहा था, अतः गुरुदेव ने उसी दिन दोनों शिष्यों को अपने पास से विदा कर दिया। वे भी गुरु-वचन को अलंघ्य जानकर उन्हें सविनय प्रणाम करके वहाँ से रवाना हो गये और अंकलेश्वर में आकर उन्होंने वर्षाकाल व्यतीत किया। वर्षाकाल के पश्चात् पुष्पदन्त तो वनवास देश को चले गये और भूतबलि द्रमिल देश को चले गये।

कुछ समय के पश्चात् पुष्पदन्त के मन में ग्रन्थरचना का भाव उदित हुआ और उन्होंने बीस प्ररूपणात्मक सूत्रों की रचना कर के जिनपालित के हाथ भूतबलि के पास भेजा। साथ ही अपने अल्पायु होने की सूचना की। तब भूतबलि ने द्रव्यप्रमाणानुगम को आदि करके ग्रन्थ रचना प्रारम्भ की और महाकर्मप्रकृतिप्राभृत का जीवस्थान, क्षुद्रबन्ध, बन्धस्वामित्व, वेदना, वर्गणा और महाबन्ध नामक छह खंडों में उपसंहार कर निबद्ध किया। महाकर्मप्रकृतिप्राभृत के उपसंहार रूप यह रचना षट्खंडागम के नाम से प्रसिद्ध हुई। जब यह ग्रन्थ समाप्त हुआ, तो उसे लिपिबद्ध कर के पुस्तकारूढ़ किया और ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को चतुर्विधसंघ के साथ बहुत समारोह से उसकी पूजा की। तब से यह तिथि श्रुतपंचमी के नाम से प्रसिद्ध हुई है, और तभी से बराबर आज के दिन समस्त भारत में जैनी लोग शास्त्रों का पूजन कर अपनी श्रुतभक्ति का परिचय देते हैं। हमारा कर्त्तव्य है कि हम समयानुकूल जैनधर्म के प्रचारार्थ आज के दिन प्रतिज्ञा करें और तदनुसार कार्य-रत हो स्वयं नवीन ज्ञान का अर्जन करने का संकल्प करें। किंतु आज दिगम्बर जैन समाज में श्रुतपंचमी के श्रुतप्रचारक पावनपर्व में हम लोग केवल अपने पुराने शास्त्रों की सम्हाल करते हैं तथा उनके वेष्टन बदलते हैं, और यदि आवश्यक प्रतीत होता है तो कुछ पुराने शास्त्रों की यथासाध्य मरम्मत भी कर लेते हैं। किन्तु श्रुतपंचमी का महत्व था आगम का उद्धार और उसका प्रकाशन एवं प्रचार। पूज्यपाद आचार्य धरसेन ने जैनागम की रक्षा करने के लिए अपना पत्र श्रमणों की सभा में इस आशय से भेजा था कि जैनागम जो भी मेरे पास सुरक्षित है उसे लिपिबद्ध करा लिया जाय और उन्होंने ऐसा कर एक महान कर्तव्य का पालन किया, तथा हमारे लिए एक आदर्श कर्त्तव्य प्रस्तुत कर दिया कि हम भी प्राणपण से उनका अनुसरण करें। आज जो आगम ज्ञान दिगम्बर जैन समाज में यत्किञ्चित् अवशिष्ट है वह उनकी कृपा का ही उत्कृष्ट फल है। हमारी समाज के विद्वान् एवं आगम के संरक्षक धनिक वर्ग का यह आवश्यक कर्तव्य हो जाता है कि अपने उन आगमों को प्रकाश और प्रचार में लायें। आज समाज में कुछ ऐसे विवादग्रस्त विषय चल पड़े है जिन पर अनुसंधान की विशेषतया आवश्यकता है किन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि उन विवादग्रस्त विषयों को शान्ति से हल करने की कोई चेष्टा नहीं की जा रही है और जिससे समाज का वातावरण दूषित होता जा रहा है। आज का युग वैज्ञानिक युग के नाम से प्रसिद्ध है। इस युग में प्रत्येक विषय खोजपूर्ण ढङ्ग से लोग सुनना चाहते हैं और उन पर विचार करने के लिए भी तैयार है। भारत के विश्वविद्यालयों ने ऐसे अनुसंधान के लिए एक खास उपाधि निश्चित की है जिससे आज तक हजारों की संख्या में अनुसंधान करनेवाले इस उपाधि से विभूषित हो चुके हैं। दर्शन, साहित्य, भूगर्भशास्त्र, गणित, विज्ञान आदि विषयों के चोटी के विद्वान् एवं अनुसंधानकर्ता भारतीय विश्वविद्यालयों ने उत्पन्न कर दिए हैं किन्तु आज तक 'दिगम्बर जैन साहित्य' दर्शन, गणित आदि पर एक भी

अनुसंधान नहीं हो सका है न समाज की दृष्टि ही इस ओर है। श्रुतपंचमी के दिन केवल शास्त्रों की पूजा एवं वेष्टन बदलने से आगम सुरक्षित न रह सकेगा। हमें वर्तमान युग के अनुकूल अपना साहित्य निर्माण करना ही होगा। अतः सामाजिक बन्धुओं को इस ओर विशेषदृष्टि देनी चाहिए तथा श्रुतपञ्चमी के दिन सामूहिक सभाओं में इस विषय पर चर्चा होनी चाहिए, जिससे हमारा साहित्य आधुनिक भाषा एवं भावों के साथ अपना प्रांजल रूप भारतीय विद्वानों के समक्ष उपस्थित कर सके। प्रत्येक धर्म को समझाने की शैली समय के अनुसार अलग अलग हुआ करती है। जिस समय भारत में प्राकृतभाषा का प्रचार था उस समय हमारे महर्षियों ने अपनी खोजपूर्ण कृतियाँ प्राकृतभाषा में निर्माण की थीं और जब संस्कृतभाषा का भारतवर्ष में प्रचार हुआ तब हमारे ग्रन्थों का निर्माण संस्कृत भाषा में दर्शनादि विषयों का तर्कणात्मक पद्धति से हुआ। अपभ्रंश भाषा का विपुल साहित्य मेरे इस कथन का उदाहरण है। आज भारत की राष्ट्र भाषा हिन्दी है। आज हमें अपनी राष्ट्रो-भाषा में जैनधर्म के मर्म को आधुनिक ढङ्ग से समझाना है इसके लिए हमें हर तरह के विद्वानों की, धार्मिक सहयोग देनेवालों की एवं अनुसंधान करनेवालों की उतनी ही आवश्यकता है जितनी आगमों को लिपिबद्ध करने के समय थी। समाज के मनीषी इस आवश्यकता को समझें और श्रुतपंचमी के दिन इन सब सहयोगों को जुटाने का प्रयत्न करें। आज मीरा, जायसी, कबीरदास, तुलसीदास आदि कवियों एवं अनेक सैद्धांतिकों के प्रांजल विचार अनुसंधानित हो चुके हैं। जैन समाज का भी कर्तव्य है कि वे अपने दार्शनिकों आगमज्ञों एवं साहित्यिकों की कृतियों पर आधुनिक ढङ्ग से अनुसंधान करने के लिए एक विशाल आयोजना बनावें। भारतवर्षीय दि० जैन-महासभा ने आज के बहुत दिन पहले एक पुरातत्त्वविभाग की स्थापना इसी दृष्टि से की थी, किन्तु उस विभाग ने कोई महत्त्वपूर्ण कार्य किया हो ऐसा देखने में नहीं मिला। आज भारत में जैन हाईस्कूलों, कालेजों एवं महाविद्यालयों की संख्या बढ़ती जा रही है उनके लिए धार्मिक कोर्ष अत्यन्त वांछनीय हैं जिसे समाज बहुत दिन से अनुभव करती आ रही है यदि इस श्रुतपंचमी पर्व के अवसर पर प्रत्येक ग्राम से १००), १००) भी इस कार्य के लिए संग्रह हो जाए तो इस वर्ष ही यह कार्य पूर्ण किया जा सकता है। कालेजों और स्कूलों के छात्रों को जैनधर्म का मौलिक ज्ञान करा देना अत्यंत आवश्यक विषय है। आशा है समाज के कर्णधार इस नम्र निवेदन पर सतर्कता से ध्यान देंगे।

——※※——